सेठ रामदयाल जाट

बनाम

लक्ष्मी प्रसाद

सिविल अपील संख्या 2543/2009

निर्णय दिनांकः 15 अप्रैल, 2009

[एस. बी. सिन्हा और डॉ. मुकुंदकम शर्मा, जे. जे.]

परिसीमा अधिनियम, 1963: अनुच्छेद 70- गिरवी रखे गए आभूषण की वसूली के लिए वाद- अनुच्छेद 70 की प्रयोज्यता- अनुच्छेद 70 के संदर्भ में, परिसीमा की अवधि तीन साल है और वह मांग के बाद इनकार करने की तारीख से चलने लगती है। ऋणदाता ने जारी किए गए नोटिस का जवाब नहीं दिया। उधारकर्ता ने उसे गिरवी रखे गहने वापस करने के लिए कहा- नोटिस प्राप्ति की तारीख के डेढ़ महीने के भीतर वाद दाखिल किया गया- इस प्रकार, वाद परिसीमा अवधि के भीतर ही पेश किया गया था। साहूकार की अभिस्वीकृति लिखित रूप में दर्ज की गई थी- उसने अभिस्वीकृति की कि आपराधिक मामले में उसने यह स्वीकार किया था, वही बात साक्ष्य में स्वीकार्य है- इस प्रकार, उधारकर्ता के पक्ष में मुकदमा

सही ढंग से निर्णीत किया गया था- साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 43 और 58।

साक्ष्य अधिनियम, 1872: धारा 43- निर्णय की स्वीकार्यता दीवानी कार्यवाही के संबंध में आपराधिक कार्यवाही- आयोजितः धारा 43 को छोड़कर, दीवानी मुक़दमे में आपराधिक अदालत का निर्णय स्वीकार्य नहीं होगा- हालाँकि, पक्ष द्वारा स्वीकार किया गया। आपराधिक मामला स्वीकार्य होगा बशर्ते कि यह एक प्रासंगिक तथ्य हो। अन्यथा इसकी स्वीकार्यता सीमित है- जो बात स्वीकार की गई है उसे साबित करने की आवश्यकता नहीं है।

प्रत्यर्थी ने ऋण प्राप्त करने के लिए अपीलार्थी- साहूकार के पास आभूषणों की कुछ वस्तुओं को गिरवी रखा। अपीलार्थी अतिरिक्त ब्याज लगाया जाता है। प्रतिवादी ने अपीलार्थी के खिलाफ आपराधिक मामला दर्ज किया। अपीलार्थी ने दोष स्वीकार किया और जुर्माना लगाया गया। प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को 12.5.98 पर गिरवी रखे गहने, हालांकि, गहने वापस करने के लिए नोटिस दिया, वापस नहीं किया गया। 26.6.98 पर प्रत्यर्थी ने गिरवी रखे गए आभूषणों की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया। प्रतिवादी के पक्ष में मुकदमा डिक्री किया गया। याचिकाकर्ता को याचिका दायर की अनुमति दी गई। इसके बाद प्रतिवादी ने दूसरी अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने कहा कि मुकदमा तीन साल की अवधि के भीतर दायर

किया गया था। गिरवी रखे गए आभूषणों को वापस करने की मांग को अस्वीकार करने की तारीख से और आपराधिक मामले में अपराध स्वीकार करना साक्ष्य में स्वीकार्य होगा। इसलिए वर्तमान अपील की गई।

याचिका खारिज करते हुए कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया।

1.1 एक की स्वीकार्यता से संबंधित कानून दीवानी कार्यवाही के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही में निर्णय कार्यवाही और इसके विपरीत प्रावधानों द्वारा शासित होता है। इसके तहत दीवानी कार्यवाही निर्धारित नहीं की जा सकती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं होगा कि यह किसी भी उद्देश्य के लिए स्वीकार्य नहीं है। जो भी हो। [पैरा 13,14 और 15] [25- एफ; 25- एच; 26- ए;27- एच; 28- ए]

अनिल बिहारी घोष बनाम श्रीमती लतिका बाला डस्सी और अन्य ए. आई. और. 1955 एस. सी. 566; पेरुमल बनाम। देवराजन और अन्य आकाशवाणी 1974 मद्रास 14; लालमुनि देवी और अन्य वी. जगदीश तिवारी और अन्य ए. आई. और. 2005 पटना 51; शांति कुमार पांडा बनाम शकुंतला देवी (2004) 1 एससीसी 438; के. जी. प्रेमशंकर बनाम पुलिस निरीक्षक और ए. एन. और. (2002) 8 एस. सी. सी. 87- संदर्भित।

1.2 दीवानी कार्यवाही के साथ- साथ आपराधिक कार्यवाही भी चल सकती है। कोई कानून प्रतिबंध नहीं लगाता है। इस संबंध में आपराधिक

मामले में निर्णय दीवानी अदालत पर बाध्यकारी नहीं होता है। यदि किसी आपराधिक कार्यवाही को प्राथमिकता दी जाती है, तो निर्विवाद रूप से दीवानी मुकदमे का निर्धारण किया जाना चाहिए। स्वयं उन साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए जो इसके समक्ष अभिलेख पर लाया गया और इसके संदर्भ में नहीं आपराधिक कार्यवाही में लाया गया साक्ष्य। [पैरा 17] [28-ई; 29- बी]:

एम. एस. शेरिफ और एन. और. वी. मद्रास राज्य और अन्य आकाशवाणी 1954 एससी 397; मेसर्स करम चंद गंगा प्रसाद और और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1970) 3 एस. सी. सी. 694; सैयद अस्कारी हादी अली ऑगस्टीन इमाम और अन्य बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) और अन्य 2009 (3) स्केल 604; इकबाल सिंह मारवाह और अन्य बनाम मीनाक्षी मारवाह और अन्य (2005) 4 एस. सी. सी. 370; पी. स्वरूपा रानी वी. एम. हरि नारायण उर्फ हरि बाबू एआईऔर 2008 एससी 1884- संदर्भित किया गया।

1.3 साक्ष्य अधिनियम की धारा 43 को छोड़कर इस अधिनियम की धारा 40, 41 और 42 को संदर्भित करता है, आपराधिक न्यायालय का निर्णय किसी मामले में स्वीकार्य नहीं होगा। वह मुक़दमे में गवाही दे रहा था, उसका सामना किया गया था। यह सवाल कि क्या उसने अपना अपराध स्वीकार किया था और तय किए गए आरोपों के लिए दोषी

ठहराया। उन्होंने ऐसा ही किया। इस प्रकार, यह स्वीकार करते हुए कि उन्होंने इसमें प्रवेश किया था प्रवेश। उन्होंने एक स्पष्टीकरण दिया कि उन्हें वकील द्वारा ऐसा करने की गलत सलाह दी गई थी। उक्त स्पष्टीकरण निचली अदालत द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था। यह माना गया था कि एक विचारशील बनें। दीवानी कार्यवाही में उनका प्रवेश साक्ष्य में स्वीकार्य था। [पैरा 18 और 19] [31- डी- एफ]

1.4 एस को देखते हुए। 58 साक्ष्य अधिनियम, वहाँ इसमें कोई संदेह या विवाद नहीं हो सकता है कि किसी चीज को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। [पैरा 20] [32- बी]

उपाध्यक्ष, केंद्रीय विद्यालय संगठन और अन्य बनाम गिरधारीलाल यादव (2004) 6 एस. सी. सी. 325; एल. के. वर्मा बनाम एचएमटी लिमिटेड और ए. एन. और. (2006) 2 एस. सी. सी 269; अवतार सिंह और अन्य वी. गुरदियाल सिंह और अन्य (2006) 12 एस. सी. सी. 552; गैन्नमनी ए एन ए सु वाई ए और अन्य वी. पार्वतीनी अमरेंद्र चौधरी और अन्य (2007) 10 एस. सी. सी. 296- संदर्भित।

1.5 हालाँकि एक आपराधिक मामले में निर्णय 20 नहीं था। अपने सिविल को साबित करने के उद्देश्य से साक्ष्य में प्रासंगिक दायित्व, दीवानी मुकदमे में उनका प्रवेश स्वीकार्य था। सवाल यह है कि क्या उनके द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण स्वीकार किया जाना चाहिए या नहीं, यह एक ऐसा

मामला है जो गिर जाएगा। साक्ष्य की सराहना के दायरे में ट्रायल कोर्ट उसी को स्वीकार किया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इसके प्रभाव पर अपने उचित परिप्रेक्ष्य में विचार करने से इनकार कर दिया। अपीलीय न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही की कि आपराधिक न्यायालय का निर्णय स्वीकार्य नहीं था। सबूत, मुकदमा पर फैसला नहीं किया जा सकता था। कहा आधार उक्त उद्देश्य के लिए, द्वारा किया गया प्रवेश अपीलार्थी अपने बयान में और आरोप का प्रभाव भी ध्यान में नहीं रखा गया था। इसलिए, उच्च यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालय ने कोई त्रुटि की है। प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करना। [पैरा 21] [32- ई- जी]

2. अवधि की प्रयोज्यता के संबंध में सीमा, सीमा अधिनियम का अनुच्छेद 70 होगा, लागू होता है। उक्त प्रावधान के संदर्भ में, सीमा की अवधि, इस प्रकार, इनकार करने की तारीख से शुरू होती है। माँगें। अपीलार्थी ने जारी किए गए नोटिस का जवाब नहीं दिया। प्रत्यर्थी द्वारा उसे प्रतिज्ञा वापस करने के लिए कह कर आभूषण इस तरह के नोटिस की प्राप्ति की दिनांकः 14.05.1998 है। मुकदमा 26.06.1998 पर दायर किया गया है, इस प्रकार, होना चाहिए निर्धारित अवधि के भीतर दाखिल किया गया है। [पैरा 22 और 23] [32- एच; 33- बी- सी]

3. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कथन अभियोग के अनुच्छेद 3 में निहित को पार नहीं किया गया था, उसी को माना जाएगा। उनके द्वारा आदेश VIII, नियम 5 सी. पी. सी. के संदर्भ में स्वीकार किया गया। [पैरा 24] [33- डी]

गौतम सरूप बनाम लीला जेटली (2008) 7 एस. सी. सी. 85; रंगनायकम्मा और अन्य बनाम के. एस. प्रकाश (डी) एल. और. द्वारा और अन्य 2008 (9) स्केल 144- संदर्भित।

मामला कानून संदर्भ

आकाशवाणी 1955 एससी 566	संदर्भित किया गया।	पैरा 14
आकाशवाणी 1974 मद्रास 14	संदर्भित किया गया।	पैरा 14
आकाशवाणी 2005 पटना 51	संदर्भित किया गया।	पैरा 14
(2004) 1 एस. सी. सी. 438	संदर्भित किया गया।	पैरा 16
(2002) 8 एससीसी 87	संदर्भित किया गया।	पैरा 16
आकाशवाणी 1954 एससी 397	संदर्भित किया गया।	पैरा 17
(1970) 3 एस. सी. सी. 694	संदर्भित किया गया।	पैरा 17
2009 (3) स्केल 604	संदर्भित किया गया।	पैरा 17
(2005) 4 एससीसी 370	संदर्भित किया गया।	पैरा 17
एआईऔर 2008 एससी 1884	संदर्भित किया गया।	पैरा 18

(2004) 6 एससीसी 325 संदर्भित किया गया। पैरा 20

(2006) 2 एस. सी. सी 269 संदर्भित किया गया। पैरा 20

(2006) 12 एस. सी. सी. 552 संदर्भित किया गया। पैरा 20

(2007) 10 एससीसी 296 संदर्भित किया गया। पैरा 20

(2008) 7 एससीसी 85 संदर्भित किया गया। पैरा 24

(2008) 9 स्केल 144 संदर्भित किया गया। पैरा 24

सिविल न्यायनिर्णयः सिविल अपील संख्या 2543/2009

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर के द्वितीय अपील संख्या 881/2009 के विरूद्ध निर्णय और आदेश दिनांकितः 07.08.2007 से।

अनुराग शर्मा (प्रशांत कुमार के लिए), अपीलकर्ताओं के लिए।

रोहित आर्यन, (अशोक माथुर के लिए), प्रतिवादीओं के लिए।

निर्णय दिया गया- एस. बी. सिन्हा, जे.

1. अपील अनुमत की गई।

2. 'गिरवी रखे गए गहनों' की वसूली के लिए मुकदमा दायर करने की समय सीमा क्या होगी, यहां यह सवाल है।

3. यह निम्नलिखित तथ्यात्मक मैट्रिक्स में उत्पन्न होता है:

26.06.1998 को या उसके आसपास, प्रतिवादी ने रुपये का ऋण प्राप्त करने के उद्देश्य से 2.12.1987 को कथित तौर पर उसके पास गिरवी रखे गए आभूषणों की कुछ वस्तुओं की वसूली के लिए सात हजार रूपये का अपीलकर्ता के खिलाफ एक दीवानी मुकदमा दायर किया।

इस आधार पर कि अपीलकर्ता ने उपरोक्त ऋण अनुदान के संबंध में मध्य प्रदेश साहूकार अधिनियम, 1934 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है, उसके खिलाफ एक आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसे 1997 के केस नंबर 511 के रूप में चिह्नित किया गया था। आपराधिक मामला, उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। रुपये का जुर्माना उस पर 150/- का जुर्माना लगाया गया. आरोप उन्हें पढ़कर सुनाया गया, जो इस प्रकार है:

> "आप पर आरोप यह है कि दिनांक 29.3.97 से पहले शिकायतकर्ता लक्ष्मी प्रसाद ने आपको उधार ली गई धनराशि का भुगतान किया था, लेकिन उसके बाद भी आप 5% ब्याज की मांग कर रहे थे। आपका यह कृत्य साहूकारी अधिनियम की धारा 3, 4 के तहत आपराधिक अपराध है। इसलिए, कारण बताओ कि आपको उक्त अपराध के लिए दोषी क्यों नहीं ठहराया जाना चाहिए।"

4. इसके बाद, जैसा कि यहां पहले देखा गया है, प्रतिवादी ने गिरवी रखे गए आभूषणों की वसूली के लिए 14 वें सिविल जज, क्लास II,

जबलपुर के समक्ष उपरोक्त सिविल सूट दायर किया, जो सिविल सूट संख्या 4- ए/1998 था। उक्त मुकदमे में अपीलकर्ता को उक्त आभूषण वापस करने या वैकल्पिक रूप से रुपये की राशि 20,000/- वापस करने का आदेश दिया गया था।

5. इससे व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलकर्ता ने इसके विरुद्ध अपील दायर की। उक्त अपील को विद्वान 16 वें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, जबलपुर ने यह कहते हुए स्वीकार कर लिया:

(i) अपीलकर्ता द्वारा कथित अपराध स्वीकारोक्ति के आधार पर दिया गया आपराधिक न्यायालय का निर्णय साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं था।

(ii) गलत कानूनी सलाह के आधार पर अपराध स्वीकार करना अपीलकर्ता पर बाध्यकारी नहीं है।

(iii) मुकदमे को परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 70 के तहत प्रतिबंधित कर दिया गया था।

6. यहां प्रतिवादी द्वारा की गई दूसरी अपील को उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय के आधार पर अनुमति दे दी।

उच्च न्यायालय ने कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किये:

1. क्या अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित था जबकि मुकदमा प्रतिवादी द्वारा मांग और इनकार की तारीख से 3 साल के भीतर दायर किया गया था?

2. क्या प्रतिवादी द्वारा किए गए कुछ लेनदेन के संबंध में आपराधिक मामले में अपराध स्वीकार करना वर्तमान मामले में इस तथ्य की सीमा तक स्वीकार्य है कि पार्टियों के बीच लेनदेन हुआ था?"

आक्षेपित निर्णय के आधार पर, उच्च न्यायालय ने राय दी कि वाद निर्धारित सीमा अवधि के भीतर दायर किया गया था, जिसे गिरवी रखे गए आभूषणों को वापस करने की मांग से इनकार करने की तारीख से तीन साल की अवधि के भीतर लाया गया था। प्रश्न संख्या 2 भी प्रतिवादी के पक्ष में यह मानते हुए निर्धारित किया गया था कि किसी आपराधिक मामले में अपराध की स्वीकृति मुद्दे में तथ्य के प्रासंगिक होने पर साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य होगी।

7. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री अनुराग शर्मा द्वारा बहस की गई:

(i) कथित तौर पर आभूषणों की गिरवी वर्ष 1987 में रखी गई थी और मुकदमा 26.06.1998 को दायर किया गया था, इसे सीमा से वर्जित माना जाना चाहिए।

(ii) गिरवी का कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया है, नोटिस भेजना ही गिरवी रखे गए आभूषणों की वसूली के लिए मुकदमा दायर करने के लिए कार्रवाई का कारण नहीं बन सकती है।

8. दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री रोहित आर्य ने तर्क दिए:

(i) परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 70 के मद्देनजर, मुकदमा परिसीमा अवधि के भीतर संस्थित किया गया पाया गया है।

(ii) भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 43 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, आपराधिक अदालत का निर्णय साक्ष्य में स्वीकार्य था।

(iii) भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 58 के अनुसार, स्वीकार की गई बातों को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिवादी द्वारा दायर मुकदमे का फैसला सही हुआ है।

9. हमारे सामने उठाए गए दोनों विद्वान अधिवक्तगण के तर्को पर विचार करने से पहले हम देख सकते हैं कि आभूषणों की कथित प्रतिज्ञा प्रतिवादी द्वारा रुपये का ऋण लेने के लिए की गई थी। 2.12.1987 को 7,000/- रु. अपीलकर्ता निर्विवाद रूप से एक साहूकार है। 29.03.1997 को उनके खिलाफ अधिक ब्याज वसूलने का आपराधिक मामला शुरू किया गया था। 29.11.1997 को या उसके आसपास, उन्होंने रुपये का जुर्माना लगाने के कारण दोषी ठहराया। उस पर 150/- का जुर्माना लगाया गया।

इसके बाद प्रतिवादी ने अपीलकर्ता को एक नोटिस भेजकर गिरवी रखे आभूषण वापस करने को कहा। चूँकि न तो उक्त नोटिस का उत्तर दिया गया और न ही आभूषण वापस किये गये, उन्होंने 26.06.1998 को मुकदमा दायर किया।

10. मुकदमा दायर करने का कारण वादपत्र के पैरा 3 में बताया गया था, जो इस प्रकार है:

> "3. वादी ने वकील के माध्यम से दिनांक 12.5.98 को पंजीकृत नोटिस भेजा और गिरवी रखे गए गहनों की मांग की। अभी भी प्रतिवादी ने वादी के गहने वापस नहीं किए हैं। इसलिए, इस वाद को प्राथमिकता दी जा रही है। वादी के वकील द्वारा भेजा गया उपरोक्त नोटिस प्रतिवादी को 14.5.98 को प्राप्त हुआ था।"

11. प्रतिवादी ने मुकदमे में गवाह के रूप में स्वयं को परीक्षित करवाया। उन्होंने कहा कि अपीलकर्ता उनका चचेरा भाई है, इसलिए कोई दस्तावेज निष्पादित नहीं किया गया। उन्होंने यह भी गवाही दी कि आपराधिक मामले में, अपीलकर्ता ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है और उसके पास आभूषण गिरवी रखे हैं, उस पर 150/- का जुर्माना लगाया गया और इसका भुगतान न करने पर पाँच दिन के कारावास का आदेश दिया गया।

12. निर्विवाद रूप से, आपराधिक मामले में निर्णय को एक प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया गया था। अपीलकर्ता ने अपने बयान में यह भी कहा:

> "...यह सही है कि वादी ने पुलिस के समक्ष मेरे खिलाफ शिकायत दर्ज की और मामला दर्ज किया गया। यह भी सही है कि मैंने अपने वकील की सलाह पर जुर्म कबूल किया। यह सही है कि उस मामले में मुझ पर 150/- रुपये का जुर्माना लगाया गया था। यह सही है कि मैं पैसे उधार देने का काम करता हूं।"

उन्होंने स्वीकार किया कि चंद्र कुमार नामक व्यक्ति ने भी उनसे पैसे उधार लिए थे।

इसके अलावा उनके द्वारा यह भी स्वीकार किया गया कि उन्हें वादी से नोटिस (प्रदर्श पी 1) प्राप्त हुआ था लेकिन उन्होंने उसका उत्तर नहीं दिया था।

13. निर्विवाद रूप से, आपराधिक कार्यवाही के साथ- साथ सिविल कार्यवाही में निर्णय की स्वीकार्यता और इसके विपरीत कानून भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित होता है।

14. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 43 इस प्रकार है:

> "43. धारा 40, 41 और 42 में उल्लिखित निर्णयों के अलावा अन्य निर्णय, आदि, जब प्रासंगिक हों- धारा 40, 41

और 42 में उल्लिखित निर्णयों, आदेशों या डिक्री के अलावा अन्य निर्णय, आदेश या डिक्री अप्रासंगिक हैं, जब तक कि ऐसे निर्णय, आदेश का अस्तित्व न हो या डिक्री, इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान के तहत विवादग्रस्त तथ्य है, या प्रासंगिक है।"

उपर्युक्त प्रावधान के संदर्भ में, किसी आपराधिक मामले में निर्णय स्वीकार्य होगा, बशर्ते कि यह मुद्दे में प्रासंगिक तथ्य हो अन्यथा इसकी स्वीकार्यता सीमित है।

अनिल बिहारी घोष बनाम श्रीमती मामले में ऐसा ही कहा गया था। लतिका बाला दस्सी और अन्य [एआईऔर 1955 एससी 566] निम्नलिखित शब्दों में:

"प्रतिवादी के विद्वान वकील ने सुझाव दिया कि निचली अपीलीय अदालत ने इस मामले में पेश किए गए सबूतों के आधार पर यह तथ्य नहीं पाया है कि गिरीश वसीयतकर्ता का निकटतम सगा था या कि चारू ने अपने दत्तक पिता की हत्या की थी, हालांकि इन मामलों को तथ्यों के रूप में मान लिया गया था। नीचे दी गई अदालतों ने इस निष्कर्ष के समर्थन में अच्छे और विश्वसनीय सबूतों का उल्लेख किया है कि गिरीश वसीयतकर्ता की संपत्ति का निकटतम प्रतिवर्ती

था। यदि वसीयत एक वैध और वास्तविक वसीयत है, तो इसमें वसीयतनामा नहीं है यदि चारू वसीयतकर्ता का हत्यारा था तो उसके पक्ष में उत्पन्न हित का सम्मान। इस प्रश्न पर नीचे की अदालतों ने सत्र परीक्षण में उच्च न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के फैसले के आधार पर यह मान लिया है कि चारू हत्यारा था यद्यपि वह निर्णय केवल यह दिखाने के लिए प्रासंगिक है कि इस तरह के मुकदमे में चारु को दोषी ठहराया गया और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई, यह इस तथ्य का सबूत नहीं है कि चारू हत्यारी थी। उस प्रश्न का निर्णय साक्ष्य के आधार पर किया जाना चाहिए।"

पेरुमल बनाम देवराजन और अन्य [एआईऔर 1974 मद्रास 14] में, यह निर्धारित किया गया था:

"2. शुरुआत में ही, मैं कहना चाहता हूं कि निचली अपीलीय अदालत का यह विचार कि वादी ने संतोषजनक ढंग से यह स्थापित नहीं किया है कि चोरी के लिए पहला प्रतिवादी या दूसरा प्रतिवादी या दोनों जिम्मेदार थे, विकृत और स्पष्ट रूप से सबूत के खिलाफ है और कानूनी स्थिति। निचली अपीलीय अदालत ने प्रदर्श ए- 3 पर भरोसा करने से

इनकार कर दिया, जो कि 1965 के सी.सी. संख्या 1949 में दिए गए फैसले की प्रमाणित प्रति है। यह सच है कि उस फैसले में चर्चा किए गए सबूत और तथ्य यह है कि पहले प्रतिवादी के पास था अपने बयान में अपना अपराध कबूल करना मुकदमे में साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं है। लेकिन यह कहना भी सही नहीं है कि पहले और दूसरे प्रतिवादियों पर आईपीसी की धारा 454 और 380 के तहत आरोप लगाए गए थे और उन्हें उन आरोपों में दोषी ठहराया गया था। स्वीकार नहीं किया जा सका। मेरी राय में, आपराधिक न्यायालय का आदेश पहले प्रतिवादी और दूसरे प्रतिवादी की दोषसिद्धि को साबित करने के लिए स्पष्ट रूप से स्वीकार्य है और यही एकमात्र बिंदु है जिसे वादी को इस मामले में स्थापित करना था..."

इसी तरह के मुद्दे को लालमुनी देवी और अन्य में कुछ विवरणों से निपटाया गया है। वी जगदीश तिवारी एवं अन्य [एआईऔर 2005 पटना 51] जहां यह निर्धारित किया गया था:

"14. अनिल बिहारी घोष बनाम श्रीमती लतिका बाला दस्सी और अन्य, (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने 1968

बीएलजेऔर 197, मुंद्रिका कुएर बनाम राष्ट्रपति में अपने फैसले में रिपोर्ट दी थी।, बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड और 8 अन्य ने समान आशय निर्धारित किया है। त्वरित संदर्भ की सुविधा के लिए निर्णय का पैराग्राफ 7 नीचे दिया गया है:-

7. यह सच है कि, यदि बोर्ड बिना किसी सामग्री के मनमानी और मनमाने ढंग से काम करता है और निजी संपत्ति का प्रबंधन करने का प्रयास करता है, यह कहते हुए कि यह एक सार्वजनिक धार्मिक ट्रस्ट है, तो इस न्यायालय को उचित मामलों में हस्तक्षेप करना पड़ सकता है; लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है यहां यह दिखाने के लिए कोई प्रथम दृष्टया सामग्री नहीं थी कि ट्रस्ट एक सार्वजनिक धार्मिक ट्रस्ट है। आपराधिक मामले (अनुलग्नक- ए) में याचिकाकर्ता के बरी होने पर बहुत अधिक भरोसा किया गया था; लेकिन यह अच्छी तरह से तय है कि बरी करना या दोषी ठहराना आपराधिक मामले का बाद के नागरिक मुकदमे में कोई साक्ष्य मूल्य नहीं है, सिवाय इसके कि यह दिखाने के सीमित उद्देश्य के अलावा कि मुकदमा चल रहा था, बरी हो गया या दोषसिद्धि हुई, जैसा भी मामला हो। आपराधिक न्यायालय के निष्कर्ष अस्वीकार्य हैं।"

15. इस प्रकार, किसी आपराधिक मामले में निर्णय सीमित उद्देश्य के लिए स्वीकार्य है। केवल उस पर या उसके आधार पर, किसी सिविल कार्यवाही का निर्धारण नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं होगा कि यह किसी भी उद्देश्य के लिए स्वीकार्य नहीं है।

16. श्री शर्मा शांति कुमार पांडा बनाम शकुंतला देवी [(2004) 1 एससीसी 438] में इस न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा करते हैं कि सिविल कोर्ट का फैसला आपराधिक अदालत पर बाध्यकारी होगा, लेकिन इसका उलटा नहीं है, यह सत्य है। उसमें यह निर्धारित किया गया था:

> "(3) एक आपराधिक अदालत का निर्णय सिविल अदालत को बाध्य नहीं करता है जबकि सिविल अदालत का एक निर्णय आपराधिक अदालत को बाध्य करता है। संहिता की धारा 145/146 के तहत कार्यवाही में कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित एक अंतवर्ती आदेश है, जो एक संक्षिप्त जांच के आधार पर किया गया है। आदेश का सम्मान करने और अंतरिम चरण में सक्षम अदालत के समक्ष प्रतीक्षा करने का अधिकार है। अधिकारों का अंतिम निर्णय अदालत के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य पर होगा। उक्त आदेश मजिस्ट्रेट का बयान सबूतों के कई टुकड़ों में से केवल एक है।"

सम्मान के साथ, इसमें निर्धारित अनुपात के.जी. में इस न्यायालय की तीन- न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के विपरीत होने के कारण पूरी तरह से सही नहीं हो सकता है। प्रेमशंकर बनाम पुलिस निरीक्षक और अन्य [(2002) 8 एससीसी 87]।

17. दीवानी कार्यवाही और आपराधिक कार्यवाही भी एक साथ चल सकती है। कोई भी क़ानून इसके संबंध में प्रतिबंध नहीं लगाता है। किसी आपराधिक मामले का निर्णय सिविल न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं होता है।

एम.एस. में शेरिफ एवं अन्य. बनाम मद्रास राज्य और अन्य [एआईऔर 1954 एससी 397], इस न्यायालय की एक संविधान पीठ इस सवाल से घिर गई थी कि क्या किसी सिविल मुकदमे या आपराधिक मामले पर रोक लगाई जानी चाहिए, अगर दोनों लंबित हैं। यह राय दी गई कि आपराधिक मामले को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। निर्णयों में टकराव की संभावना के संबंध में, यह माना गया कि कानून ऐसी स्थिति की परिकल्पना करता है जब यह स्पष्ट रूप से कुछ सीमित उद्देश्यों को छोड़कर, एक न्यायालय के निर्णय को दूसरे पर बाध्यकारी या प्रासंगिक बनाने से रोकता है, जैसे सजा या नुकसान. यह माना गया कि एकमात्र प्रासंगिक विचार शर्मिंदगी की संभावना थी।

यदि किसी आपराधिक कार्यवाही को प्रधानता दी जाती है, तो निर्विवाद रूप से, सिविल मुकदमे का निर्धारण उन सबूतों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए जो उसके सामने रिकॉर्ड पर लाए गए हैं, न कि आपराधिक कार्यवाही में लाए गए सबूतों के संदर्भ में।

प्रश्न के.जी. में विचार हेतु आया। प्रेमशंकर (सुप्रा), जिसमें इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ- साथ कहा:

> "30 उपरोक्त चर्चा से जो उभरता है वह है- (1) पिछले फैसले पर भरोसा किया जा सकता है जो कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 40 से 43 के तहत प्रदान किया गया है; (2) समान पक्षों के बीच नागरिक मुकदमों में, का सिद्धांत न्यायिक न्याय लागू हो सकता है; (3) एक आपराधिक मामले में, सीऔरपीसी की धारा 300 यह प्रावधान करती है कि एक बार किसी व्यक्ति को दोषी ठहराया जाता है या बरी कर दिया जाता है, यदि उसमें उल्लिखित शर्तें पूरी हो जाती हैं, तो उस पर उसी अपराध के लिए दोबारा मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है; (4) यदि आपराधिक मामला और सिविल कार्यवाही एक ही कारण के लिए हैं, सिविल कोर्ट का निर्णय प्रासंगिक होगा यदि धारा 40 से 43 में से किसी की भी शर्तें पूरी होती हैं, लेकिन यह

नहीं कहा जा सकता है कि धारा 41 में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर यह निर्णायक होगा। धारा 41 यह प्रावधान करती है कि कौन सा निर्णय उसमें कही गई बातों का निर्णायक प्रमाण होगा।

31. इसके अलावा, पिछली सिविल कार्यवाही में पारित निर्णय, आदेश या डिक्री, यदि प्रासंगिक है, जैसा कि धारा 40 और 42 या साक्ष्य अधिनियम के अन्य प्रावधानों के तहत प्रदान किया गया है, तो प्रत्येक मामले में, अदालत को यह तय करना होगा कि यह किस हद तक बाध्यकारी है या उसमें तय किए गए मामले(मामलों) के संबंध में निर्णायक। उदाहरण के लिए, बी की संपत्ति पर ए द्वारा कथित अतिक्रमण के मामले में, बी ने अपने स्वामित्व की घोषणा के लिए और ए से कब्जा वापस पाने के लिए मुकदमा दायर किया और मुकदमा डिक्री हो गया। इसके बाद, अतिचार के लिए बी द्वारा ए के खिलाफ आपराधिक अभियोजन में, सिविल कार्यवाही में पार्टियों के बीच पारित निर्णय प्रासंगिक होगा और अदालत यह मान सकती है कि यह निर्णायक रूप से संपत्ति पर बी के स्वामित्व के साथ-साथ कब्जे को भी स्थापित करता है। ऐसे मामले में, ए को अतिचार के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। ऊपर उद्धृत

धारा 42 का चित्रण स्थिति को स्पष्ट करता है। इसलिए, प्रत्येक मामले में, पहला प्रश्न जिस पर विचार करने की आवश्यकता होगी वह है- क्या निर्णय, आदेश या डिक्री प्रासंगिक है, यदि प्रासंगिक है- तो इसका प्रभाव क्या है। यह किसी सीमित उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हो सकता है, जैसे मकसद या किसी मुद्दे पर तथ्य के रूप में। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

हालाँकि, मेसर्स करम चंद गंगा प्रसाद और अन्य मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है। आदि बनाम भारत संघ एवं अन्य [(1970) 3 एससीसी 694], जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया था कि सिविल कोर्ट के फैसले आपराधिक अदालतों पर बाध्यकारी होंगे, लेकिन इसका उलटा सच नहीं है, यह कहते हुए खारिज कर दिया गया:

33. इसलिए, वी.एम. शाह मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी कि आपराधिक अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष सिविल अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष से स्थापन हैं, कानून की सही व्याख्या नहीं है। इसके अलावा, करम चंद मामले में की गई सामान्य टिप्पणियां ऊपर

बताए गए मामले के तथ्यों के संदर्भ में हैं। न्यायालय को एम.एस. शेरिफ मामले में संविधान पीठ के पहले के फैसले के साथ- साथ साक्ष्य अधिनियम की धारा 40 से 43 पर विचार करने की आवश्यकता नहीं थी।"

[सैय्यद अस्करी हादी अली ऑगस्टीन इमाम और अन्य को भी देखें। बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) और अन्य 2009 (3) स्केल 604] इस न्यायालय की एक अन्य संविधान पीठ को इकबाल सिंह मारवाह और अन्य मामले में प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला। वी. मीनाक्षी मारवाह और अन्य [(2005) 4 एससीसी 370]। एम.एस पर भरोसा शेरिफ (सुप्रा) के साथ- साथ विभिन्न अन्य निर्णयों में, यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था:

"32. अंतिम तर्क पर आते हुए कि सिविल और आपराधिक अदालतों के बीच निष्कर्षों के टकराव से बचने का प्रयास किया जाना चाहिए, यह इंगित करना आवश्यक है कि दोनों कार्यवाहियों में आवश्यक सबूत के मानक पूरी तरह से अलग हैं। सिविल मामलों का फैसला किया जाता है सबूतों की प्रबलता के आधार पर, जबकि एक आपराधिक मामले में पूरा बोझ अभियोजन पक्ष पर होता है और उचित संदेह से परे सबूत देना होता है।"

पी. स्वरूपा रानी बनाम एम. हरि नारायण @ हरि बाबू [एआईऔर 2008 एससी 1884] मामले में यह प्रश्न एक बार फिर विचार के लिए आया, जिसमें कानून इस प्रकार कहा गया था:

> "13. हालाँकि, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी दिए गए मामले में, सिविल कार्यवाही और आपराधिक कार्यवाही एक साथ आगे बढ़ सकती है। क्या सिविल कार्यवाही या आपराधिक कार्यवाही रोकी जाएगी, यह प्रत्येक मामले के तथ्य और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।"

18. यह अब लगभग अच्छी तरह से तय हो गया है कि, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 43 को छोड़कर, जो धारा 40, 41 और 42 को संदर्भित करता है, एक आपराधिक अदालत का निर्णय एक सिविल मुकदमे में स्वीकार्य नहीं होगा।

19. हालाँकि, जो स्वीकार्य होगा वह पिछली कार्यवाही में एक पक्ष द्वारा की गई स्वीकृति है। अपीलकर्ता की स्वीकारोक्ति लिखित रूप में दर्ज की गई थी। जब वह मुकदमे में गवाही दे रहा था, तो उसे इस सवाल का सामना करना पड़ा कि क्या उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है और लगाए गए आरोपों के लिए दोषी ठहराया है। उसने वैसा ही किया. इस प्रकार, यह स्वीकार करने के बाद कि उसने आपराधिक मामले में स्वीकारोक्ति की है, वही साक्ष्य में स्वीकार्य था। वह इससे मुकर सकता था

या अपनी स्वीकृति स्पष्ट कर सकता था। उन्होंने स्पष्टीकरण दिया कि वकील ने उन्हें ऐसा करने की गलत सलाह दी थी। उक्त स्पष्टीकरण को ट्रायल कोर्ट ने स्वीकार नहीं किया। इसे बाद का विचार माना गया। सिविल कार्यवाही में उनकी स्वीकृति साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य थी।

20. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 58 इस प्रकार है:

> "58- स्वीकार किए गए तथ्यों को साबित करने की आवश्यकता नहीं है किसी भी कार्यवाही में किसी भी तथ्य को साबित करने की आवश्यकता नहीं है जिसे उसके पक्षकार या उनके एजेंट सुनवाई में स्वीकार करने के लिए सहमत हैं, या जिसे सुनवाई से पहले, वे अपने हाथों से किसी भी लेख द्वारा स्वीकार करने के लिए सहमत हैं, या जिसे उस समय लागू दलील के किसी नियम द्वारा उनकी दलीलों द्वारा स्वीकार किया गया माना जाता है: बशर्ते कि न्यायालय, अपने विवेक से, स्वीकृत तथ्यों को ऐसी स्वीकृति से अन्यथा साबित करने की अपेक्षा कर सकता है।"

उपर्युक्त प्रावधान के मद्देनजर, इसमें कोई संदेह या विवाद नहीं हो सकता है कि स्वीकार की गई बात को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। [देखें उपाध्यक्ष, केंद्रीय विद्यालय संगठन और अन्य बनाम गिरधारीलाल यादव (2004) 6 एससीसी 325, एल.के.

वर्मा बनाम एचएमटी लिमिटेड और अन्य (2006) 2 एससीसी 269, अवतार सिंह और अन्य बनाम गुरदयाल सिंह और अन्य (2006) 12 एससीसी 552, गन्नमनी अनसूया और अन्य बनाम पार्वतीनी अमरेंद्र चौधरी और अन्य (2007) 10 एससीसी 296]

21. इसलिए, हमारी राय है कि यद्यपि एक आपराधिक मामले में निर्णय उसके सिविल दायित्व को साबित करने के उद्देश्य से साक्ष्य में प्रासंगिक नहीं था, लेकिन सिविल मुकदमे में उसकी स्वीकृति स्वीकार्य थी। यह प्रश्न कि क्या उनके द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को स्वीकार किया जाना चाहिए या नहीं, एक ऐसा मामला है जो साक्ष्य की सराहना के दायरे में आएगा। ट्रायल कोर्ट ने इसे स्वीकार कर लिया था। प्रथम अपीलीय अदालत ने इसके प्रभाव पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार करने से इनकार कर दिया। अपीलीय अदालत ने इस आधार पर कार्यवाही की कि चूंकि आपराधिक अदालत का निर्णय साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं था, इसलिए उक्त आधार पर मुकदमे का फैसला नहीं किया जा सकता था। उक्त उद्देश्य के लिए, अपीलकर्ता द्वारा अपने बयान में की गई स्वीकारोक्ति और आरोप के प्रभाव पर भी विचार नहीं किया गया था।

इसलिए, हमारी राय है कि यह नहीं कहा जा सकता कि उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय अदालत के फैसले में हस्तक्षेप करने में कोई त्रुटि की है।

22. जहां तक परिसीमा अवधि की प्रयोज्यता का प्रश्न है, परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 70 लागू होगा। इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:

दावे का विवरण	**समय की अवधि**	**समय कब से शुरू होता है**
चल संपत्ति की वसूली के लिए दावा जमा की गई संपत्ति या गिरवी रखी गई संपत्ति को प्राप्त करने के लिए	तीन वर्ष की अवधि	मांग करने पर - इंकार करने पर

उपर्युक्त प्रावधान के संदर्भ में, सीमा की अवधि, मांग के बाद इनकार की तारीख से शुरू होती है।

23. अपीलकर्ता ने प्रतिवादी द्वारा जारी उस नोटिस का जवाब नहीं दिया जिसमें उसे गिरवी रखे गए आभूषण वापस करने के लिए कहा गया

था। ऐसे नोटिस की प्राप्ति की तारीख 14.05.1998 है। इस प्रकार, 26.06.1998 को दायर किया गया मुकदमा, निर्धारित सीमा अवधि के भीतर दायर किया गया माना जाना चाहिए।

24. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वादपत्र के पैराग्राफ 3 में निहित कथनों का पालन नहीं किया गया था, इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 5 के संदर्भ में उनके द्वारा स्वीकार किया गया माना जाएगा।

गौतम सरूप बनाम लीला जेटली [(2008) 7 एससीसी 85] में, इस न्यायालय ने कहा:

> "14. किसी अभिवचन में की गई स्वीकारोक्ति को किसी दस्तावेज़ में की गई स्वीकारोक्ति के समान नहीं माना जाना चाहिए। किसी पक्ष द्वारा लम्बित मामलें में (लिस) में की गई स्वीकारोक्ति उसके प्रोप्रियो विगोर के खिलाफ स्वीकार्य है।"

[रंगनायकम्मा और अन्य बनाम के.एस. भी देखें। प्रकाश (डी) एलऔर और अन्य द्वारा 2008 (9) स्केल 144]

25. उपरोक्त कारणों से, इस अपील में कोई योग्यता नहीं है, जिसे तदनुसार खारिज किया जाता है। हालाँकि, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

अपील खारिज की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी प्रदीप कुमार (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।